क्या सुलझ पाएगी भूमंडलीकरण की उलझी डोर

drishtiias.com/hindi/printpdf/is-globalization-going-to-be-unravelled

पिछले कुछ समय से भूमंडलीकरण की सेहत कुछ अच्छी नहीं चल रही है। आज से केवल 10 वर्ष पहले जो भूमंडलीकरण अपार लाभ देने वाला माना जाता था, आज उसे अर्थव्यवस्थाओं को बीमार करने वाला माना जा रहा है। दरअसल किसी भी व्यवस्था की प्रासंगिकता तभी तक है जब तक कि उससे देश और समाज लाभान्वित हो रहा है और भूमंडलीकरण से तो सभी लाभान्वित हो रहे हैं।

ऐसे में भूमंडलीकरण के विरुद्ध एक समग्र वैश्विक अवधारणा के बनने के क्या कारण हैं? क्या यह सच में अर्थव्यवस्थाओं को बीमार करने वाला है या फिर वैश्विक समुदाय का यह मोहभंग किन्हीं प्रचलित अवधारणाओं के कारण है? इस लेख में हम इन बिन्दुओं के अलावा भारत में भूमंडलीकरण की प्रासंगिकता भी चर्चा करेंगे।

क्या सच में कम हुआ भूमंडलीकरण का प्रभाव?

- इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि अमेरिका तथा पश्चिम के कुछ देशों में सरंक्षणवाद को बढ़ावा मिला है। 2008 की वैश्विक मंदी के बाद दुनिया के तमाम बड़े देशों ने अपनी अर्थव्यवस्था में कुछ सरंक्षणवादी उपाय किये और वर्तमान में इन उपायों में मात्रात्मक वृद्धि हुई है।
- अमेरिका ने टीटीपी छोड़ दिया है। बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के प्रति इसकी प्रतिबद्धता भी सवालों के घेरे में है, क्योंकि अभी तक यह विश्व व्यापार संगठन में अपना प्रतिनिधि नियुक्त नहीं कर पाया है। अमेरिका ने एच-वीजा प्राप्त करने के नियमों को सख्त बना दिया है।
- हाल-फिलहाल की जिन घटनाओं का कारण भूमंडलीकरण को बताया जा रहा है वह दरअसल, कई अन्य कारणों से है। पूंजी, मानव संसाधन तथा वस्तु एवं सेवाओं की मुक्त आवाजाही ही भूमंडलीकरण है और यह आज भी जारी है।
- जहाँ तक अमेरिका द्वारा एच-1 के संबंध में नियमों को सख्त बनाने का सवाल है तो यह भूमंडलीकरण को शायद ही प्रभावित करे, क्योंकि इससे केवल मानव संसाधन की आवाजाही सीमित हो रही है न कि पूंजी एवं अन्य महत्त्वपूर्ण घटकों की। वहीं यदि ब्रेक्जिट की बात करें तो ब्रिटेन के यूरोपियन यूनियन से अलग होने का कारण भूमंडलीकरण कम और शरणार्थी संकट ज़्यादा था।
- निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पिछले कुछ दिनों में भूमंडलीकरण की रफ्तार कम ज़रूर हुई है, लेकिन इसे एकदम से चूका हुआ मान लेना प्रचलित अवधारणाओं का व्यापक प्रचार-प्रसार ही है।

भारतीय संदर्भ में भूमंडलीकरण की प्रासंगिकता

- एशियाई विकास बैंक (एडीबी) ने हाल ही में अनुमान लगाया है कि वर्ष 2030 तक भारत को बुनियादी ढाँचे के विकास पर 4.4 ट्रिलियन डॉलर खर्च करने की ज़रूरत है और इसके लिये अभी से सलाना 120 मिलियन डॉलर खर्च करना होगा।

- इसका अर्थ यह है कि बुनियादी ढाँचे में निवेश पर भारी भरकम खर्च करना होगा और एफडीआई यानी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी।
- दरअसल यह कहा जा रहा है कि भारत को अब विश्व बैंक और एडीबी जैसी संस्थाओं की ज़रूरत नहीं है। यह कहना उचित नहीं होगा। आज देश में पीपीपी मॉडल के (public-private partnership model) के माध्यम से बुनियादी ढाँचे के विकास को बल दिया जा रहा है।
- निवेशकों को किसी प्रोजेक्ट को आरंभ करने के लिये जटिल पर्यावरणीय अनुमतियों, अप्रचलित भूमि अधिग्रहण कानूनों आदि से होकर गुज़रना पड़ता है, जिसके कारण विलंब होता है और परियोजना की लागत बढ़ जाती है। सार्वजनिक क्षेत्र इस बढ़े हुए लागत का बोझ उठाने को बाध्य है जबकि निजी क्षेत्र को इसके लिये बाध्य नहीं किया जा सकता।
- लेकिन, विश्व बैंक और एडीबी जैसी वैश्विक संस्थाओं की सक्रिय भूमिका के ज़रिये हमें इन हालातों से निपटने हेतु अंतर्राष्ट्रीय मानक उपलब्ध होंगे। अतः भारत जैसे विकासशील देश में आर्थिक विकास को गति देने हेतु भूमंडलीकरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता।

क्यों बरतनी होगी सावधानी?

- जबकि एक पक्ष यह भी है कि पश्चिमी देशों के संपर्क से भारत जैसे देशों में एक नए अभिजात वर्ग का जन्म हुआ है, जिसने उपभोक्तावादी संस्कृति को अपना लिया है। इस वर्ग में भी उन वस्तुओं को पाने की होड़ लग गई, जो पश्चिमी देशों के विकसित समाज को उपलब्ध थीं।
- इन वस्तुओं की उपलब्धि को सामाजिक प्रतिष्ठा से भी जोड़ दिया गया। अतः इस वर्ग की नकल करते हुए मध्यम और निम्न-मध्यम वर्ग में भी इन संसाधनों को पाने की अभिलाषा जाग गई।
- भारत जैसे देश में यही अभिजात वर्ग राजनीति के शीर्ष पर विद्यमान रहा है, परिणामस्वरूप देश के संसाधनों का प्रयोग आम लोगों की आवश्यकता की वस्तुओं के निर्माण की जगह इस उपभोक्तावादी वर्ग की ज़रूरत पूरी करने वाली वस्तुओं और सुविधाओं के निर्माण में हो रहा है।
- ये उद्योग पूंजी प्रधान हैं, इनके कारण विदेशों पर हमारी निर्भरता बढ़ी है और गैर-ज़रूरी मशीनों और तकनीकों के आयात से मुद्रा की हानि हुई है। इन वस्तुओं के उत्पादन से प्राकृतिक संसाधनों पर अनावश्यक बोझ भी बढ़ा है और पर्यावरण की अपूरणीय क्षति हुई है।
- भारत जैसे देशों में उपभोक्तावाद व्यापक गरीबी के बीच लग्ज़री वस्तुओं की होड़ को बढ़ाता है। चूँकि इन वस्तुओं का उपार्जन प्रतिष्ठा का आधार है, अतः इन्हें पाने की लालसा ने भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था और संस्कृति को भी नुकसान पहुँचाया है।
- अब संपन्न ग्रामीण लोगों में भी उन वस्तुओं के प्रति आसक्ति पनप गई है, जो वस्तुएँ उपभोक्तावादी संस्कृति की देन हैं। उनका अतिरिक्त धन जो पहले सेवा कार्यों में खर्च हुआ करता था, उपभोक्तावाद के चलते अब वो निजी दिखावे में खर्च हो रहा है। समाज के नैतिक मानकों में गिरावट व दैनिक जीवन में तनाव में वृद्धि भी उपभोक्तावाद के कुछ अन्य परिणाम हैं।

निष्कर्ष

- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, निवेश तथा सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से विश्व के विभिन्न देशों के बीच सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक अंतर्क्रिया व एकीकरण की प्रक्रिया को भूमंडलीकरण कहते हैं। इसका चरित्र बहुआयामी है। यह एक प्रक्रिया के साथ ही एक अवधारणा भी है।
- भारत जैसे अन्य विकासशील तथा तीसरी दुनिया के देशों पर भूमंडलीकरण का प्रभाव प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों में पड़ा है।
- दरअसल, भूमंडलीकरण ने निश्चित तौर पर मांग और उत्पादन में वृद्धि की है, जिसके कारण रोज़गार भी बढ़े हैं। तकनीकी विकास भी भूमंडलीकरण का एक सकारात्मक परिणाम है, लेकिन इसी से ही जन्मे उपभोक्तावाद ने

भूमंडलीकरण के लाभों को क्षीण कर दिया है।

- हालाँकि यह तो तय है कि भारत भूमंडलीकरण की व्यवस्था का त्याग नहीं कर सकता। अतः प्रचलित अवधारणाओं के बहाव में बहने के बजाय भूमंडलीकरण को मानवीय स्वरूप प्रदान किये जाने की आवश्यकता है। इसके लिये मानव समाज को अति उपभोग और अनावश्यक संग्रह की जीवन-शैली का त्याग करना होगा।